(1) एशियायी देशों के साथ भारत का सांस्कृतिक सम्पर्क

Indians Cultural contacts with asian countries.

भारत हड़प्पायुग से ही अपने एशियायी पड़ोसियों से घनिष्ठ सम्पर्क बनाये रहा। भारतीय व्यापारियों की मेसोपोटामिया से अनेको मुहरे प्राप्त हुई है, जो इसका प्रबल प्रमाण है। मौर्य युग के बाद भारत का सम्पर्क एशियायी देशों के साथ व्यापक पैमाने पर स्थापित हुआ। भारतीय व्यापारी धर्मप्रचारक विजेता आदि, एशिया के विभिन्न देशों में गये। वे वहां धर्म प्रचार के अलावा अपने स्थायी उपनिवेश व राज्य स्थापित किये, जिसे वृहत्तर भारत कहा जाता है। दूसरे एशियायी देशों के अनेक विजेता शासक व धर्म प्रचारक भारत आये, जिससे व्यापक पैमाने पर सांस्कृतिक आदान प्रदान हुआ तथा भारत व एशियायी देशों की सांस्कृतियों पर एक दूसरे का अधिक प्रभाव पड़ा। भारत व एशियायी देशों के साथ सांस्कृतिक सम्पर्क का विवरण दो शीर्षकों के अन्तर्गत दिया जा सकता है। प्रथम भाग में मध्य एशिया, तिब्बत, चीन व अफगानिस्तान को रखा जा सकता है। जबकि द्रितीय भाग में हिन्द चीन तथा दक्षिण पूर्वी द्वीप समूह को।

(1) भारत व मध्य एशिया– मध्य एशिया में भारतीय संस्कृति की स्थापना को श्रेय सर्वप्रथम अशोक को दिया जा सकता है कि उसने अपने धर्म प्रचारकों को बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार के लिए मध्य एशियायी देशों में भेजा था। मौर्य काल के पश्चात भारत वर्ष पर यूनानी, शक, पहलव, कुषान आदि विदेशी आक्रमणकारियों का आक्रमण हुआ। चूंकि इनका सम्बन्ध मध्य एशियायी देशों से भी था। अतः यह स्वाभातिक था कि इसके द्वारा भारतीय संस्कृति का प्रसार मध्य एशिया तथा मध्य एशियायी संस्कृति का प्रसार मभारत में होता। सर्वप्रथम संस्कृति के प्रसार का मुख्य विवरण निम्न है।

चीन भारत तथा इरान के मध्य स्थित प्रदेश, मध्य एशिया अथवा चीनी तुर्किस्तान कहा जाता है। मध्य एशिया में हुई स्थानों पर उत्खननों के फलस्वरूप अनेकों स्तप, बौद्ध विहार, भारतीय मूर्तियां, सांस्कृ और पाली के ग्रथंत था। भारतीय भावाओं में लिखी पांडुलिपिया मिली है। कुषाण शासन के विस्तार के फलस्वरूप खटोष्ठी लिपि में लिखी प्राकृत भाषा मध्य एशिया में फैली। जहाँ इसा की चौथी नदी के अनेक प्राकृत अभिलेख न पांडुलिपियां मिलि है। इसके अतिरिक्त कनिष्ठि के काल में अनेकों भारतीय बौद्ध धर्म प्रचारक मध्य एशिया में भेजे गये थे।

मध्य एशिया में कूची और खोतान भारतीय संस्कृति के प्रमुख केन्द्र थे। यहां भारतीय संस्कृति के प्रसार का मुख्य कारण बौद्ध धर्म भली भांति स्थापित हो चुका था। खोतान में स्थिति गोमती बौद्ध विहार बौद्ध शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था।

भारतीय कला की गंधार शैली का भी प्रभाव यहाँ की मूर्तियों, स्तूपों आदि पर स्पष्टतः परिलक्षित होता है। इस प्रकार धर्म के साथ–साथ भारतीय कला और चिकित्सा का प्रसार भी हुआ। कुची के प्राचीन नरेश सुवर्ण पुष्प, हरिपुष्प हरदेव सुवर्णदेव जैसे भारतीय नाम धारण करते थे। सम्भवतः कुछ भारतीय खूची में जाकर वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित किये। इसका ज्वलंत प्रमाण भारतीय कुमारायण व कूची कन्या जीवा से उत्पन्न संतान कुमारजीव का है। जिसने अपनी विदता से भारत मध्य ऐशिया तथा चीन में यश अर्जित किया था।

यूनानी शक, पल्लव, तथा कुषाण आक्रमणकारी अपने साथ मध्य एशिया की संस्कृति का वाहक बन कर भारत में आये तथा उनका प्रचार प्रसार किया। इन मध्य एशियायी विजेताओं ने

अनगिनत छोटे–छोटे देशी राजाओं पर अपना शासन भार लाद दिया। इससे एक प्रकार की सामंती व्यवस्था का जनम हुआ। कुषाणों ने राज्य शासन में क्षेत्र–प्रनासी चलाई साम्राज्य अनेक आत्मवियों में बांट दिया गया और हर एक अत्मयी एक–एक अतूप के शासन में छोड़ दिया गया।

भारतीय व्यापारी काश्गर याटकन्द्र खोतान भीरय, कूची काशहर तथा तुफलि जैसे स्थानों पर व्यापार केन्द्रो तथा वार्क्क बस्तियों की स्थापना की। जहाँ शीघ्र ही बौद्ध प्रचारक पहुंच गये और धर्म तथा संस्कृति का प्रसार किये।

शकों तथा कुषाणों ने व्यापक पैमाने पर उत्तम अश्वारोही सेना और अश्वारोहण की परम्परा चलाई। उन्होने लगाम तथा जीन तथा अंगूठा रकाव का प्रयोग प्रचलित किया। जो हमें ईसा की दूसरी और तीसरी सदियों की बौद्ध मूर्तियों में दिखाई देते है।

शक तथा कुषाणों ने जुते, पगड़ी, कुरती, पायजामा तथा लम्बी कोटो के पहनावे का प्रचलन किया। यूनानी, शक पर्थियन और कुषाणों ने भारतीय समाज में अंततः अपने को विलीन कर दिया। जिससे भारतीय समाज में एक नये तत्व का उदय हुआ, जिन्हें स्मृतिकार मनु ने द्रितीय श्रेणी का क्षत्रिय कहा है।

कुषाण काल में ही बौद्ध धर्म की महायान शाखा का विकास हुआ। गंधार तथा मथुरा जैसी नयी कजा शैलियों का विकास हुआ। भारतीय शिल्पकारों का विशेषकर भारत के पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त गंधार में मध्य एशियायी, यूनानी तथा रोमन शिल्प कारों के साथ सम्पर्क हुआ। जिसमें नयी शैली (गंधार) का उदय हुआ, जिसमें बुद्ध की प्रतिमाये यूनान तथा रोम की मिश्रित शैली में बनायी गयी। उल्लेखनीय है कि सर्वप्रथम बुद्ध की मुर्ति कुषाण काल में ही हुई। इसके पहले उनकी प्रतीक पूजा ही प्रचलित थी।

विदेशियों ने पर्दे का प्रचलन भी आरम्भ किया। जिससे भारतीय नाटकीय कला के विकास में वृद्धि हुई। चुंकि पर्दा युनानियों की देन था। इसलिए इसे यवनिका कहाँ गया है।

भारतीय विज्ञान तथा प्रौधोगिकी भी प्रभावित हुई। यूनानियों के सम्पर्क से भारतीय ज्योतिश तथा जमोलशस्त्र की भी उन्नति इस काल में शीशे के काम पर भी विदेशी विचारों और तरीकों का विशेष रूप से प्रभाव पड़ा। शीशे के काम में ऐसी प्रगति नहीं हुई जैसी इस काल में हुई।

प्राचीन काल में अफगालिस्तान बौद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ से अनेको बौद्ध विहार और मूर्तियां मिली है। वेगराम और वमियान ऐसे पुरा व शेषो के लिए विख्यात है। विश्व की सबसे बड़ी बुद्धमुर्ति, जो 10वीं सन् के आरम्भिक वर्षो में चट्टान को काटकर बनाई गयी। बमियान का गौरव बड़ा रही है। यहाँ अनगिनत प्राकृतिक का कृत्रिम गुहाएं है। जिनमें बौद्ध भिक्षु रहते थे।

तिब्बत में भी भारतीय संस्कृति का प्रसार बौद्ध धर्म के कारण ही हुआ। अनेक भारतीय विद्वान तिब्बत गये और बौद्ध ग्रंथों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया ऐसे ग्रंथों में तंजूर और कजूर के नाम विशेष प्रसिद्ध है। तिब्बती चित्रकला में भारतीय विषयों के चित्र प्राप्त होते है। बंगाल के पाल शासकों में धर्म का तिब्बत में अधिक प्रसार हुआ। दींकर नामक एक बौद्ध विद्धान ने तिब्बत जाकर वहाँ प्रचार का कार्य प्रतिपादित किया था। तिब्बत में भारतीय लिखी का भी प्रयोग किया गया।

भारत और चीन– भारत तथा चीन के मध्य सम्बन्ध के अंकेट अतिप्राचीन काल से ही प्राप्त होते है। चीनी अनुभुतियों से प्रगट होता है कि चीन में बौद्ध धर्म के प्रचार का प्रयत्न ई0 पूर्व छठी शताब्दी में ही किया गया था। परन्तु उसे सफलता न मिली थी। लेकिन चीन में बौद्ध धर्म सरकारी तौर पर ई0 पूर्व द्रितीय शताब्दी में गया था।

चीन के राजकीय स्त्रोतो से ज्ञात होता है कि 65 AD में हनवंश के शासक मिगती ने स्वप्न में एक स्वर्णिम पुरूष के दर्शन किये। उसके दरबारियों ने उस पुरूष की पहचान बुद्ध से की। फलस्वरूप उसने पश्चिम में अपने दूत भेजे, जो अपने साथ धर्मरत्न तथा काश्यप तथा मातंग नामक दो बौद्ध भिक्षु ले गया। चीनी सम्राट ने उनके रहने के लिए राजधर्म में एक विहार का निर्माण करवाया। जिसे श्वेताश्व विहार कहा गया।

इसके बाद चीन में प्रत्येक राजवंश ने बौद्ध को संरक्षण प्रदान किया। तांग काल को तो चीन का बौद्ध काल ही कहा गया है। 379 AD में चीन में बौद्ध मत को राजधर्म घोषित कर दिया था। जिसके फलस्वरूप उसके अनुयायियों की संख्या काफी बढ़ी।

तांगकाल में– प्रभाकर मित्र दिवाकर जोधिरूचि अमोघवज्र, वज्रमित्र जैसे अनेक बौद्ध प्रयारक चीन गये।

बौद्ध धर्म की सरलता व्यवहारिकता से प्रभावित होकर अनेक चीनी यात्रियों ने संस्कृति तथा पालि में रखे गये मूल बौद्ध ग्रंथो की प्रतियां लेने तथा पवित्र बौद्ध धर्म स्थलों के दर्शनीय भारत की यात्रा की । इनमें फाहियान, सुंगयून, ह्वेनसांग तथा इत्लिंग थे।

इन सम्पर्को के फल रूप चीनी संस्कृति ने भारतीय संस्कृति के अनेक तत्वों का समावेश हुआ। सम्भवतः सर्वाधिक स्पष्ट प्रभाव शिल्प तथा कला में भारतीय तकनीक का उपयोग था। अनेको गुफा मन्दिरों का निर्माण किया गया। बुद्ध की मुर्तियों को बनाने के लिए भारतीय कलाकारों को आमंत्रित किया गया। लेकिन बाद में चीनी ये काम स्वंय करने लगे। भारत के सम्पर्क से संगीत, ज्योतिष तथा चिकित्सा शास्त्र आदि सभी क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। तांग राजाओं के काल में अनेको ज्योतिषी रहते थे। एक भारतीय विद्वान ने तांग सम्राट को एक भारतीय पंचाग समर्पित किया था। भारत के यांत्रिक योगी चीनी शासकों के दरबार में जाकर रोगो का निदान प्रस्तुत करते थे।

भारतीय गंधार कला का स्पष्ट प्रभाव चीन की कला पर पड़ा। बुद्ध मत जापान में चीन की मुख्य भूमि से होता हुआ सातवी शताब्दी में पहुंचा था। आठवी शताब्दी में एक भारतीय भिक्षु जापान गया तो वहाँ बौद्धो की बहुत बड़ी संख्या तथा भारतीय वर्णमाला के विषय में उनका नाम देखकर उसे हर्ष मिश्रित आश्चर्य हुआ था। भारतीयों ने भी चीनीयों से रेशम उपजाने की कला तथा चीनी मिटटी के बर्तन बनाने की तकनीक को सीखा था।

भूमिका– इण्डो, यूनानी राजाओं ने पश्चिमी एशिया और भूमध्य सागरीय रूसेरा को सम्पर्क स्थापित करने को पोत्साहन दिया शक, पार्थियन, कुषाण जाजाओं ने भारतीय वकिलो के मध्य एशिया के द्वार खोले जिसके फलस्वरूप चीन से भारत का व्यापार होने लगा। मसालों और ऐसी ही अन्य विलास पूर्ण वस्तुओं के लिए रोमनो की मांग भारतीय व्यापारी के दक्षिण पूर्व एशिया तक लगायी तथा रोमन व्यापारी को दक्षिण और पश्चिम भारत तक ले गयी।

भारत व्यापारी कारीगर चारकन्द, खोतान, मोरन कूची, कडा शहर और तुफनि जैसे स्थानों पर व्यापार केन्द्रो और वर्णिम वस्तुओं की स्थापना कर रहे थे न शक्ति ही भारतीय बौद्ध प्रयारक भी उन क्षेत्रों में पहुंचने लगे।

———————————————————

दक्षिण पूर्व एशियां से सम्पर्क–

साहित्यिक साक्ष्यों से यह होता है कि भारत तथा सूदूर दक्षिण पूर्व के बीच सम्पर्क का मुख्य प्रेरक व्यापार ही था। व्यापार के कारण बस्तियों की स्थापना हुई। जिन्हों ने न केवल धीरे–धीरे उपनिवेशें का रूप धारण कर लिया। अपितु इन प्रदेशो में स्वतंत्र हिन्दू राज्यो की स्थापना कर डाली।

1. दक्षिण पूर्व एशिया के अन्तर्गत कम्बोडिया चम्पा वर्मा स्थान (थाईलैंड) तथा मलद्वीप जिन्ह सामूहिक रूप से हिन्दचीन कहा जाता है तथा पूर्वी द्वीप समूह के जावा बोनियो और वाली के द्वीप सम्मिलित है। प्राचीन भारत वासी इस सम्पूर्ण क्षेत्र को सुवर्णभूमि या सुवर्णद्वीप के नाम से जानते थे।

हिन्द चीन के राज्यों में सर्वप्राचीन राज्य, कम्बुज अथवा युनान (कम्बोडिया) का था। जिसकी स्थापना प्रथम शताब्दी में कौडिनय नामक ब्राह्मण ने की थी। इस नगर की स्थापना भारतीय नगरों की पद्धति पर हुआ था। कम्बुज के अनेक नगरों के नाम भी भारतीय है। जैसे विक्रमपुर, ताम्रपूर, ध्रुवपुर, संस्कृति भाषा कम्बुज की लोक प्रिय भाषा थी। यहाँ के राजा ने स्वंय पतंजलि के भाष्य पर टीका लिखी थी। यहाँ के लोग वेद उपनिषद महाकाव्य तथा स्मृतियों आदि से परिचित थे। यहाँ की सर्वाधिक विलक्षण धारा अकोर वाट का भव्य विष्णु मन्दिर है। जो पूरी तरह भारतीय शैली से निर्मित है। इसकी दिवारों पर रामायण महाभारत की कहानियाँ उभरी हुई मुर्तियां में अंकित है।

1. चम्बा के ऊपर भारत वर्ष का पूरा सांस्कृतिक प्रभाव था। यहाँ सभी भारतीय पर्व व महोत्सव मनाये जाते थे। यहाँ भारतीय पंचाग का भी प्रचलन था। यहाँ के अभिलेख वाह्य लिपी तथा संस्कृत भाषा में है। यहाँ शैव तथा वैष्ण व दोनो धर्म प्रतिष्ठित थे।
2. स्थान (थाईलेंड) की प्राचीन राजधानी का नाम रामायण की अयोध्या के अनुकरण पर आयूथिया रखा गया था। यहाँ की बनी मुर्तियां भारतीय मुर्तिकला का पुनर्रावृति थी

मजूमदार के शब्दो में भारतीय संस्कृति के सूदूर पूर्व में प्रवेश का मुख्य द्वार मलय प्रायद्वीप ही था। ईसा की प्रथम शताब्दी में भारतीयों ने यहाँ कई राज्यों की स्थापनास की थी। मनुया के विभिन्न भागो में मन्दिर तथा मुर्तियां के खंडहर प्राप्त हुए है।

भारतीय संस्कृति के प्रभाव से बर्मा भी अछुता नहीं रहा। भारतीय नामी भाषाओ और लिपियों के साथ–साथ वर्मा में हिन्दु धर्म शास्त्रों की भी स्थापना हुई थी। उनका धर्म शास्त्र मनुस्मृति तथा याज्ञवनय स्मृति पर आधारित है। यहाँ की कलायर भी भारतीय प्रभाव स्पष्ट द्वष्टि गोचर होता है।

(2) पूर्वीद्वीप समूहों में समात्रा में सबसे प्राचीन हिन्दू राज्य श्री विपय था। पल्लवों ने सुमात्रा में उपनिवेशनीय द्वीप में पाराशर व्यास आदि ऋषियों ने भारतीय उपनिवेश की स्थापना किया था। यहाँ के निवासी अपना सम्बंध, हस्तिनापुर के निवासियों से जोड़ते है।

भारत ने ईसा की प्रथम सदी से ही जावा के साथ घन्ष्ठि व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किये थे। यहाँ भारतीय बस्तियां सबसे पहले 56 में स्थापित हुई। जावा ब्राह्मण धर्म प्रधान देश था यहाँ ब्राह्ममण देवी, देवताओं में ब्रह्मा शिव, विष्णु यम दुर्गा आदि की मुर्तियां मिलती है। जावा के

मन्दिरों में मुर्तियों द्वारा अनेक कथानको को प्रदर्शित किया गया है। यथा सीता हरण वालि वध आदि।

ब्राह्मण धर्म के साथ–साथ यहाँ बौद्ध धर्म भी प्रचलित था। यहाँ बुद्ध मोधिसत्वों और तारादेवी की बहुसंख्यक मुर्तिया पायी है। वोरोबुद्धर का बौद्ध स्तूप संसार प्रसिद्ध है।

जावा की कला पर भारतीय प्रभाव स्पष्ट यप से परिलक्षित होता है। इनकी कलाकृतियों में वोरोवूदूर का बौद्ध मन्दिर प्रमुख है। यहाँ संसार का सबसे बड़ा बौद्ध मन्दिर है। इसका निर्माण आठवी सदी में हुआ था। इस पर बुद्ध के 436 चित्र उत्कीर्ण है।

जावा (इण्डोनेशियां) के निवासियों ने अपने देशज संस्कृति तथा भारतीय साहित्य के अनुकरण कर अपना एक विकसित साहित्य के निर्मित किया। जिसे इण्डो जापानी साहित्य कहा जाता है। जावा में महाभारत के आधार पर अनेक ग्रंथो की रचना हुई। जिनमें अर्जुन विवाह भारत युद्ध स्मरयहन, कमनसातक आदि अल्लेखनीय है। आज भी इण्डोनेशियां के भाषा, वहसा में अनेकों सस्कृति के शब्द पाये जाते है।

सुमाता और जावा के अतिरिक्त बोर्नियो तथा वाली भी हिन्दु स।सकृति के प्रमुख केन्द्र थे। वोर्नियो में हिन्दुओं ने चौथी शताब्दी में अपना उपनिवेश बनाया था। यहाँ के प्रमुख राजाओं के नाम कोडिन्य अश्वुवर्मन, मूलवर्मन लिवासी ब्राह्मण थे। वोर्नियों में ब्रह्मा, विष्णु शिव, गणेश, स्कन्द, अगस्तय आदि के साथ–साथ महात्मा बुद्ध की मुर्तियां मिली है।

चीनी ग्रंथो से ज्ञात होता है कि हिन्दुओं ने बली में भी छठी शताब्दी तक अपनी उपनिवेश स्थापना कर ली थी। महात्मा बुद्ध के साथ–साथ यहाँ दुर्गा, शिव, गणेश आदि की भी पूजा होती थी।

कुल मिलाकर मूर्तियों के बारे में कहा जा सकता है कि थाइलैंड में मिला बुद्ध मुंड तथा कम्बोज में से प्राप्त बुद्ध मुंड तथा जावा में मिली कांसे की शानदार मूर्तियां दक्षिण पूर्व एशिया की स्थानीय कला परम्पराओं के साथ भारतीय कला के संगम के उत्कृष्ट उदाहरण जिनकी तुलना अजन्ता के चित्रों से की जाती सकती है। न मात्र श्री लंका में बल्कि चीनी सीमा पर भी लुन–हुआड गुहाओं में भी मिले है।

बंकोर वाट तथा वोरे वूदूर के मन्दिर के अतिरिक्त बर्मा के पैमाने में स्थिति आनंद मन्दिर चम्या के माईसोन तथा पो–नगर के मन्दिर अकोरथेम का वेयोन मन्दिर, जावा का लोरो जौगरम मन्दिर आदि भी सूदूर पूर्व के हिन्दू वास्तु एवं स्थापित्य के अनूठे उदाहरण है।

मन्दिरों के अतिरिक्त विभिन्न स्थानों से बुद्ध बोधिसत्व विष्णु, शिव, ब्रह्मा, लक्ष्मी, गणेश, कार्तिकेय आदि देवी–देवताओं की बहुसंख्यक मुर्तियां भी प्राप्त होती है। जो दक्षिण पूर्वी ऐशियां में हिन्दू तक्षण कला के व्यापक प्रचार प्रसार की संबल साक्षी है।

यह मानना मिथ्या होगा कि– केवल भारतीयों ने ही अपने पड़ोसियों के सांस्कृतिक विकास में योगदान किया। यह दो तरफा प्रक्रिया थी। भारतीयों ने भी अपने दूर और पास के पड़ोसियों से भौतिक संस्कृति के कई उपादेश तहव भी लिये। उन्होंने यूनानियों के तथा रोमनो से सोने का सिक्का ढालना सीखा। गंधार कला का विलय हुआ, चीनियों से रेशम पेदा करना सीखा। इण्डोनेशिया जीवा से पा की बेल लगाना सीखा और कई अन्या चीजे सीखी। इसी प्रकार कपास उगाने की कला, भारत से चीन और मध्य एशिया गयी।

ऐसा प्रतीत होता है कि– कला, धर्म लिपी और भाषा के क्षेत्र में भारत का योगदान अधिक था। किन्तु पड़ोसी देशों में जो संस्कृति विकसित हुई। वह किसी भी तरह भारतीय संस्कृति की प्रतिकृति

मात्र नहीं। जिस प्रकार भारत ने विदेशी प्रभावों के बावजूद उपने व्यक्तिगत को बनाये रखा और उसका विकास किया उसी प्रकार दक्षिण पूर्व एशिया के देशों ने भारतीय संस्कृति के कई तत्वों को मिलाकर अपनी–अपनी संस्कृति की। इसी तथ्य को ध्यान में शायद रोमिला थापर जी लिखती है कि– इस कान में दक्षिण पूर्व एशिया को वृहत्तर भारत कहना निःसदेह गलत है। क्योंकि इन देशों में जीवन हर पक्ष में स्थानीय संस्कृति की झलक देखने को मिलती है।

दक्षिण एशियां– यूनानियों तथा रामनों के दीर्घ कालीन प्रभाव में रहने के परिणाम यह हुआ कि– भू–मध्यसागरीय विश्व के विभिन्न ग्रन्थों–जैसे– सट्रेवोकी ज्योग्राफी, एरियन की इण्डिका, पिलनी की नेचुरल हिस्ट्री, पेरीप्लस ऑफ सरीपि यन्स सके, तालमी की जयोग्राफी आदि में भारत की विस्तृत चर्चा हुई और यूनानियों तथा रोमनों को विश्व का जैसा परिचाय था। उसमें भारत को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ और सर्वाधिक प्रत्यक्ष और दर्शनीय प्रभाव कला के क्षेत्र में पड़ा। फलस्वरूप गंधार कला की मिश्रित यूनानी भारतीय शैली का जन्म हुआ। गंधार कला का जन्म अलेक्जेन्ड्रिया की ग्रोमों रोमन शैली की कला उत्तरी भारत में पहुंची उस समय बौद्ध धर्मशास्त्र में संतो और देवताओं की संख्या में वृद्धि हो रही थी और इन दोनो का सम्मिलित प्रभाव मूर्तिकला और चित्रकला के लिए आदर्श प्रमाण हुआ।

यूनानियों ने शायद बौद्ध मत इसलिए स्वीकृत किया होगा कि क्योंकि ब्राह्मणों के वर्ण की सीमाओं में बंधे हुए व्यवहार की अपेक्षा इसके माध्यम से भारतीय समाज तक पहुंचना सरल था।

पश्चिम एशियाा में भारतीय विचारों का प्रभाव भी इस युग में देखा जा सकता है। विशेष रूप से मनिके, नास्तिक और नवरलेटो मतानुयालियों के सिद्धान्त का अध्ययन इस दृष्टि से अत्यन्त रोचक है। ईसा के जीवन के कुछ प्रसंग बुद्ध के जीवन की दन्त कथाओं में वर्णित घटनाओं से इतने मिलते जुलते है कि कुछ अप्रत्यक्ष ऋगादान की बात न सोच पाना कठिन हो जाता है। इसीनों के कर्मकाण्ड का अध्ययन करने से भी यह संकेत मिलता है कि भू–मध्य सागरीय संसार को भारतीय धार्मिक विश्वास तथा आचीन की जानकारी थी। भारतीय धर्म के अन्य रूपों का भी अनुकरण का पश्चिम में हुआ जैसे सन्यास, स्मारकपूजा तथा स्द्राक्षमाला का उपयोग।

अनेक भारतीय राजाओं ने रेमन को अपने दूत भेजे। अनमें सम्भवतः सर्वाधिक प्रसिद्ध वह था जो लगभग 20 BC में भडौच से समुन्द्री मार्ग द्वारा गया था और जिसके साथ पशुओं और मनुष्यों का अनोखा समूह था। जैसे चीतर, सर्प, कच्छप एक भिक्षु तथा ऐसा भुजाहीन लड़का जो जैर के अगूठे से बाण चला सकता था। ये रोमन सम्राट आगस्त के दरबार में 21 BC में पहुचा था।

————————————————————

सातवाहन– Polity, Craft, Trade and Tawns, Religious Devolopment, Art.

(1) Polity- राज व्यवस्था

ईसा पूर्व प्रथम शती में विन्धय पर्वत के दक्षिण में दो शक्तियों का उदय हुआ। उपरी दकन में सातवाहन तथा कलिंग में चेदि। इनमें चेदियों की शक्ति अल्पकालीन थी किन्तु सातवाहन भक्ति का तीन सदियों तक निरन्तर उत्कर्ष हाता रहा तथा उनकी सत्ता किसी न किसी रूप में साढेचार शताब्दी तक बनी रही। उत्तर भारत में मौर्यो के सबसे महत्वपूर्ण देशी उत्तराधिकारी शुगं तथा कष्व थे जबकि दकन और मध्य भारत में मौर्यो के उत्तराधिकारी सातवाहन हुए। सातवाहन साम्राज्य के अन्तर्गत समस्त दक्षिणापथ सम्मिलित था और उत्तर भारत में सम्भवतः मगध तक उसका विस्तार था। सातवाहन सम्राटों ने न केवल विदेशियों के विरूद्ध अपनी स्वाधीनता की रक्षा की अपितु साहित्य कला, व्यापार, वाणिज्य, धार्मिक विकास शिल्प आदि को पोत्साहन प्रदान करके अपनी प्रजा की भौतिक एवं सांस्कृतिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया।

सातवाहन राजाओं ने मौर्य नरेशों के आदर्श पर ही अपने प्रशासन का गठन किया। शासक का स्वरूप राजनीति पर ही अपने प्रशासन का गठन किया। शासन का स्वरूप राजतन्त्रात्मक था। सम्राट प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी था। सातवाहन शासकों ने धर्मशास्त्रों में बताये गये राजा के आदर्श पर चलने के प्रयास किये। राजा धर्म का सरक्षक होता था। राजा अपनी देवी उत्पत्ती में विश्वास करता था। नासिक लेख में गौतमीपुत्र शातकर्णी की तुलना कई देवताओं– राम भीम केशव अर्जुन आदि से की गयी है। बल और पराक्रम में राजा की तुलना उक्त पौरामिणक पुरूषों और दिव्य विभूतियों से की गयी है। राजा– राजन, राजराज, महाराज तथा शको के अनुकरण पर स्वामित्र जैसी अपाधियाँ धारण करता था। उस काल की दो रानियो नागालिका तथा गौतमी वलभी ने प्रशासन में सक्रिय भूमिका निभाया था।

सम्राट की सहायता के लिए अमात्य व महामात्य नामक पदाधिकारियों का एक सामान्य वर्ग होता था। प्रशासन की सविधा के लिए साम्राज्य को अनेक विभागों में बांटा जाता था। जिन्हें आहार अशोक कालीन (जिला) कहा जाता था। आहार का शासन सेनापति चलाता था। सेनापति को ही प्रांत का गवर्नर शासनाध्यक्ष बनाया जाता था। इस प्रकार सातवाहनों के प्रशासन में कुछ खास सैनिक व सामंत्रिक लक्षण पाये जाते है। प्रत्येक आहार के अन्तर्गत एक निगम तथा कई गांव थे। ग्राम का शासन एक ग्रमिक चलाता था। जिसका उल्लेख हाल की गाथासप्तशदी में मिलता है। नगरों का शासन का निगम सभा द्वारा चलाया जाता था।

स्थानीय शासन अधिकांशतः सामंतो द्वारा चलाया जाते थे सातवाहन राज्य में सामंतो की तीन श्रेणियां थी। प्रथम श्रेणी का सामंत राजा कहलाता था। द्रितीय श्रेणी का सामंत महाभोज कहलाता था। इन दोनो को अपने–अपने क्षेत्रों के निमित्त सिक्के जारी करने का भी अधिकार था। तृतीय श्रेणी के सामंत को सेनापति कहा जाता था।

सातवाहनों ने ब्राह्मणों तथा बौद्ध भिक्षुओं को कर मुक्त भूमि दान देने की प्रथा को आरम्भ किया।

सातवाहन लेखों से प्रशासन के कुछ अन्य पदाधिकारीयों के नाम मिलते है। जैसे– भाण्डागारिक, रज्जुक, पनियधरक, कर्मान्तिक, सेनापति आदि।

(2) शिल्प– Craft--

सातवाहनों का काल पश्चिम भारत के शिल्प और वाणिज्य के इतिहास में चरम उत्कर्ष का काल था। इस काल में कलाओं और शिल्पो का विलक्षण विकास हुआ। इस काल ग्रंथो में हम शिल्पियों के जितने प्रकार जाते है। उतने पहले के लेखों में नही।

साहित्यिक स्त्रोतो में तो शिल्पियों को अधिकतर नगरो से जोड़ा गया है। किन्तु कुछ उत्खननों से ता चलता है कि वे गांवो में भी बसते थे। तेलगाना स्थिति करीमनगर के एक गांव में बढ़ई, लोहार, सोनार, कुम्हार आदि अलग–अलग टालों में रहते थे तथा कृषि मजदूर तथा अन्य मजदूर एक दूसरे छोर पर बसते थे। मिलिन्द पन्हों में 75 व्यवसाय गिनाये गये है। जिनमें 60 प्रकार के शिल्पों से सम्बद्ध थे।

इस प्रकार काल में अभिलेखो में कुम्भकार, लोहार, स्वर्णकार, धालिक, वंशकर, तिलपिसक, वर्गाकार, कांसकार, गांधिक, बुनकर आदि विभिन्न व्यवसायों से सम्बन्धित शिल्पों का उल्लेख मिलता है।

शिल्पी बहुत बड़ी संख्या में आपस में संगठित होते थे। जिनके संगठन का नाम श्रेणी था। श्रेणियां मौर्य काल से ही चली आ रही थी। विभिन्न प्रकार के शिल्पियों का श्रेणी संगठनों के संगठित होने का मुख्य कारण यह था कि क्योंकि व्यक्तिगत रूप से शिल्पी को श्रेणियों से प्रतिस्पर्धा करना कठिन था। इसके अतिरिक्त श्रेणियां उन्हें सामाजिक मर्यादा और बहुत हद तक सामान्य सुरक्षा भी प्रदान करती थी। जिस क्षेत्र में श्रेणियां कार्य करती थी। उसमें उन्हें अपना पंजीकरण कराना आवश्यक था और परिवर्तन करने के लिए स्थानीय अधिकारियों से अनुमति प्राप्त करनी पड़ती थी।

ये श्रेणियां कार्य करने के नियम और तैयान माल की गुणवत्ता तथा उनके मुल्य निर्धारित करती थी ताकि शिल्पी तथा उपभोक्ता दोनो की रक्षा हो सकें। श्रेणियां अपने सदस्यों के व्यक्तिगत जीवन में भी हस्तक्षेप करती थी।

श्रेणियां राजनीतिक भूमिका निभाने के साथ–साथ महाजन, वित्त, प्रबन्धक तथा नयासधारी के रूप में भी कार्य कर सकती थी। ये अपने सिक्के भी जारी करती थी। खुदाईयों से ऐसी अनेक मुद्राये मिली हो। जिनपर श्रेणियों और निगयों के प्रतीक चिन्ह मुद्रांकित हो उत्सव समारोहों के अवसर पर श्रेणियों की पताकायें और अधिकार चिन्ह शोभा यात्रा में ले जाये जाते थे।

प्रत्येक व्यवसायिक संध की अलग–अलग श्रेणी होती थी जिसका प्रधान श्रेष्ठित कहा जाता था। श्रेणी के कार्यालय को निगमसभा कहते थे। इनके अपने–अपने व्यापारिक नियम थे। जिन्हे श्रेणी धर्म कहा जाता था। इन्हें हस्तक्षेप की और से मान्यता थी। राज्य दनमें हस्तक्षेप नही कर सकता था।

श्रेणियां बैकिंग का कार्य भी करती थी। नासिक लेख से पता चलता है कि गोवर्द्धन में बुनकरें की एक श्रेणी के पास 2000 काषी पणो की एक अक्षय निधि एक प्रशिक्षित मासिक ब्याज की दर पर जमा की गयी थी।

शिल्पी सोना, चांदी, सीसा, टीन, तांबा, जीतल, लोहा और रत्ल के काम करते थे। पीतल जस्ते एटीमनी और लाल आर्सोनिक के कई प्रभेदो का उल्लेख है। इससे खान, धातु के कौशल में भारी प्रगति और विशेषी करण का पता चलता है। अनेक उत्खनन स्थलों पर कुषाण और सातवाहन

कालीन स्तरो मे लौह शिल्प की वस्तुए अधिकाधिक मिली है। आन्ध्र प्रदेश के तेलगाना की करीम नगर और नालगोंडा जिलो में हथियारो के अलावा तराजू के डंडी मूढ़वाले फावड़े और कुल्हाड़ियां, हंसिया, फाल, उस्तरा और कच्छुल आदि लोहे की वस्तुए मिली है।

कपड़ा बनाने, रेशम बुनने, ओरभस्त्रो एवं विलासपूर्ण वस्तुओं के निर्माण में भी भारी प्रगति हुई मथुरा सटका नामक विशेष प्रकार के वस्तु के निर्माण तमिलनाडु में त्रिरूचिरावल्ली नगर के उपस्तवर्ती उरैयर में ईटों का बना एक रंगाई का हौज मिला है। अरिकामेडू में भी उस तर का हौज मिला है।

विलासपूर्ण वस्तुओं का उत्पादन करने वाले शिल्पों में हाथी दांत का काम शीशें का काम और मणिमाणिग्य बनाने का काम उल्लेखनीय है। भारतीय दन्तशिल्प की वस्तुए अफगानिस्तान और रोम मे मिली है।

भारत ने शीशा ढालने की जानकारी ईसा सन के आरम्भ में आकर प्राप्त की और उसे चोटी पर पहुंचाया।

सिक्कों की ढलाई एक महत्वपूर्ण शिल्प था। यह काल सोना, चांदी, तांबा, कांसा, सीमापोटीन के तरह–तरह के सिक्के बनाने के लिए मशहुर है। शिल्पी लोग रोमन सिक्के की भांति सिक्के भी ढाल लेते थे।

कुम्भकारी से सम्बंधित व्यवसाय उस समय काफी उन्नति पर था। उस समय अनेक प्रकार के मृद्राओं के अतिरिक्त सुन्दर मुर्तियां, विशाल मात्रा में पायी गयी है। इस प्रसंग में नालगोंडा जिले के येल्लेश्वरम का लाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। जहाँ मुर्तियां तथा उनके निर्माण के सांचे सबसे अधिक संख्या में मिले है। मुर्तियां तथा सांचे कोडापुर (हैदराबाद) में भी मिले है।

रोमिलाथापर की मान्यता है कि प्रमुख श्रेणियां कुम्भकारों, धातुकारों तथा काष्ठकारों की थी। इनका आकार काफी बड़ा होता था। जिसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि इससे भी पूर्व काल में सद्दलपुत्र नामक एक धनी कुम्भकार मिट्टी के बर्तन बनाने की पांच सौ कार्यशालाओं का स्वामी था।

———————————————————

Trade and Town - वाणिज्य और नगर

सातवाहन काल में आंतरिक तथा बाह्य दोनो ही व्यापार अपनी चरम उत्कर्ष में था। देश के भीतर प्रतिष्ठान नगर, जुन्नर, नासिक, करहाहक, वैजयती, धन्यकरक, विजयपुर आदि अनेक व्यापारिक नगर थे। रामी गोदावरी तथा कृष्णा नदियों के डेल्टा के बीच स्थित अनेक बंदरगाहो का उल्लेख करता है तथा बताता है कि उन स्थानों से मलयद्वीप तथा पूर्वी द्वीपो के लिए जहाज जाते थे। सातवाहन नरेशो के कुछ सिक्को पर दोपतवार बरवे जहाज के चित्र मिलते है जो उनके विदेशी व समुन्द्री व्यापार का मूल साक्षी है।

स्लिनी के कथनानुसार– सबसे बड़ा भारतीय जलयान 75 टन का था। परन्तु अन्य स्त्रोत इससे भी बड़े अनुमान प्रस्तुत करते है। साहित्यिक ग्रंथो में तीन पांच या सात सौ यात्रियों के ले जाने वाले जलयानों की चर्चा प्रायः मिलती है।

इस काल की सर्वाधिक क्रांतिकारी घटना थी भारत व रोमन साम्राज्य के बीच फूसता–फूसता व्यापार। भवन व्यापारियों ने सातवाहनों के राज्यों में तथा सूदूरदक्षिण के राज्यों में अपने व्यापारिक संसार खोले थे। आरम्भ में यह अधिकतर स्थल मार्ग से होता था। ईसा पूर्व की प्रथम सदी से शको पथियनो और कुषाणो के संचार के काल स्थल मार्ग से व्यापार करना संकट नायन्न हो गया। अंतः ईसा की पहली सदी से व्यापार मुख्यतः समुन्द्री मार्ग से होने लगा। लगता है कि ईसा सन के आरम्भ के आस–पास मानसून के रहस्य का पता लग गया था। फलस्वरूप अब समुन्द्री रास्ते से व्यापार और भी सरल हो गया। अब व्यापारी भारत के विभिन्न बन्दरगाहों पर आसानी से आ सकते थे।

पश्चिमी तट पर भडौच तथा ओपारा व गुजारिश तथा पूर्वी समुन्द्र तट पर अरिकामेडू ताम्रलिप्ति तथा कावेटी पत्त नम आदि बंदरगाह थे।

इन सभी बंदरगाह में भडौच सबसे अधिक महत्वपूर्ण बंदरगाह था। यहाँ सातवाहन शक तथा कुषाण सभी के माल पहुंचते थे।

ईसा की प्रथम शताब्दी में लिखी गयी अज्ञात लामा पुस्तक येरीप्लन ऑफ एरीथियनसी में उन वस्तुओं का जिन्हें जहाजों में ले जाया जात था तथा व्यापारियों और जलयानों द्वारा अपनाये गये मार्गो का विवरण दिया गया है। इस काल तक सम्पूर्ण भारत में व्यापारिक मार्गो का जाल बिछ चुका था और इनमें से कुछ मार्ग मो मध्य एशिया और पश्चिमी एशिया तक जाते थे।

शक और कुषाण लोग पशिचमोत्तर सीमा प्रात से पश्चिमी समुन्द्र तक दो मार्गो से जाते थे। दोनो मार्ग तक्षशिला में मिलते थे और मध्य एशिया से गुजरने वाले रेशम मार्ग से भी जुड़े थे। प्रथम मार्ग उत्तर से सीधे दक्षिण की और जाता था। तथा तक्षशिला को निम्न सिन्धु घाटी से जोड़ता था । दूसरा मार्ग उत्तरापथ नाम से विदित है। जो अधिक चालू था। यह तक्षशिला से चलकर आधुनिक पंजाब होते हुए यमुना के पश्चिमी तट पहुंचता और यमुना का अनुसरण करते हुए दक्षिण की ओर मथुरा पहुचता था। फिर मथुरा से मालवा के उज्जैन पहुंच कर वहाँ से पश्चिमी समुन्द्र तट पर भडौच जाता था।

(1) इस काल में भारत का व्यापार मुख्यतः पश्चिमी एशिया, मध्य एशिया, चीन, रोम तथा दक्षिण पूर्वी एशिया से होता था। इण्डोनेशिया से भारत में हाथी दांत तथा सोना आता था और

भारतीय मलमल वहाँ भेजा जाता था। फारस की खाडी के दक्षिणी तटो पर स्थित नगर भारतीय तांबा, चंदन, सागवान तथा दास भेजते थे।

सिंधु घाटी पर स्थित बंदरगाह– वाटवरीकम से क्षैम वस्तू, पुखराज, मूंगा, शिलाजीत, लोहवान, कांच, चांदी, सोना तथा मदिरा का आयात किया जाता था तथा अनेको प्रकार के मसाले, फिरोजे, नीलम, मलमल, रेशम के धागे और नील का निर्यात करता था। नीलमकित या वैदुर्य अफगानिस्तान तथा इरान से आता था।

वरीगाजा(भडौच) भारत के पश्चिमी तट पर सबसे प्राचीन तथा सबसे बड़ा प्रवेश द्वारा था और पश्चिमी एशिया से अधिकांश व्यापार इसी के माध्यम से होता था। यह विविश प्रकार के मिले जुले माल का आयात करता था। जिसमें इटली, यूनान, अरव की मन्दिरा, तांबा, टीन, जस्ता, मूंगा, पुष्वराज, शिलापीत, कांच, सुरमां स्वर्ण, चांदी की मुद्राये और विभिन्न प्रकार की औषधियां आयात की जाती थी। यहाँ से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में मसाले, जटासामी, मालवापरम, हीरे नीलम तथा रत्न आदि सम्मिलित थे।

(2) इस युग में भारतीय का रोमन के साथ व्यापार सर्वाधिक लाभयुद्ध था। रोम वाले ने सबसे पहले देश के सूदूर दक्षिणि हिस्से से व्यापार आरम्भ किया। इसीलिए इनके सबसे पहले सिक्के तमिल राज्यों में मिले है। जो सातवाहन राज्य क्षेत्र से बाहर है।

रोम वाले मुख्यतः मसालो का आयात करते थे जिनके लिए दक्षिण भारत मशहुर था। वे मध्य तथा दक्षिनी भारत से मलमल मोती रत्न और मणिक्य का आयात करते थे। लोहे की बनी वस्तुए खासकर बर्तन निर्यात की मुख्य वस्तु थी।

भारत से सीधे भेजी जाने वाली वस्तुओं के अलावा कुछ वस्तुए चीन और मध्य एशिया से भारत आती थी और तब यहाँ से रोमन सम्राज्य के पूर्वी भागो में भेजी जाती थे। असी मध्यस्थ भूमिका के कारण तथा रोमनो द्वारा प्रेरित किये जाने के कारण भारतीय व्यापारी सर्वप्रथम दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में व्यापार (मसाला) के लिए गये।

रेशम चीन से सीधे रोमन साम्राज्य को अफगानिस्तान और इरान से गुजरने वाले रेशम मार्ग से भेजा जाता था। लेकिन पार्थिया और रोम का संघर्ष होने के कारण पार्थियां चीनी माल को सीधे रास्ते से पश्चिम तक नहीं जाने देता था। इस लिये यह व्यापार तक्षशिला और भड़ौच के माध्यम से होने लगा। जिसमें कुषाणों ने चीन तथा रोम के मध्य मध्यस्थता की भूमिका निभाई। इसमें (भारत) कुषाण साम्राज्य को अभूत पूर्व लाभ हुआ।

बदले में रोमन लोग भारत को शराब के दोहत्थे कलश तथा मिटटी के अन्यान्य प्रकार के पात्र भेजते थे। ये वस्तुए तामलुक, अरिमेडू(पांडिचेरी) आदि स्थानो से मिली है।

1945 में अरिका मेडू में हुई खुदाई में एक ऐसी विशाल रोमन बस्ती मिली है। जो एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र था।

डा0 थापर जी का विचार है कि अरिका मेडू में रोम निवासियों के रूचि तथा उनके द्वारा दिये गये नमूनों के अनुसार भारतीय मलमल का निर्माण होता था। जो जहाजों द्वारा रोम को भेज दिया जाता था।

इतिहासकारों ने सम्भावना व्यक्त की है कि सातवाहन अपना सिक्का ढालने में जिस सीसे का प्रयोग करते थे। वह रोम से लपेटी हुई पट्टियों की शकल में भारत में मंगाया जाता था। अनेको रोमन वस्तुओं अफगानिस्तान और पश्चिमोत्तर भारत में मिलती है। बेग्राम (कावस) में इटली भिक्षू और सीटिया में बने भीशे के बड़े–बड़े मर्तबान मिले है। यहाँ कटोरे, कांसे का गोड़ा, इस्पात

का पैमाना पश्चिमी वाट, कांसे की छोटी–छोटी यूनानी रोमन मूर्तियाँ सुराही तथा सिलखडी के अनेक पात्र मिले है तथा शिला में यूनानी रोमन कास्यं मूर्तियों के उत्कृष्ट नमूने मिले है। चांदी के गहने कुछ कास्य पात्र एक कलश तथा रोमन सम्राट तिवेरियस के सिक्के भी मिले है।

रोमन लोग भारतीय माल का मूल्य मुख्यतः स्वर्ण मुद्राओं में चुकाते थे। दकन और दक्षिणी भारत में मिलने वाले रोमल म्रद्रायों के कोजों से पता चलता है कि यह व्यापार कितने बड़े पैमाने पर होता था। यहाँ पाये गये अधिकांश सिक्के आगस्तस तथा रिवेरियक, रोमन सम्राट के है। चूंकि नीरो के सिक्को में खोट था। इसलिए लोगो ने उन्हें पसन्द नहीं किया था। रोम से होने वाले व्यापार में भारत को यहाँ से प्रतिवर्ष 55 करोड़ संस्टर्ट की प्राप्ति होती थी। शायद इसीलिए 77 AD में रोमन लेखक प्लिनी ने अपने लैटिन भाषा में लिएखे गये ग्रंथ Natural History में दुख पूर्ण शब्दो में लिखा था कि– भारत के साथ व्यापार करके रोम अना स्वर्ण भंडार लुटाता जा रहा है।

इसी तरह की शिकायत पहले लगभग 22 AD में भी सुनाई पड़ती थी कि–"रोम पूरब से गोल मिर्च मगाने पर अधिक खर्च कर रहा है।" उल्लेखनीय है कि पश्चिम के लोगो को गोलमिर्च इतनी प्रिय थी कि संस्कृत में गोल मिर्च का नाम **पवनप्रिय** पड़ गया था।

भारत में बने छुरे कांटे के प्रयोग पर भी रोम में प्रतिक्रिया हुई जिन्हे रोमन अमीर ऊँची किमतों पर खरीदते थे।

अंततः रोम की मुद्रा में होने वाली कमी का अनुभव इतना तेज हुआ कि अंत में रोम को भारत के साथ गोलमिर्च और इस्पात में माल का व्यापार बंद करने के लिए कदम उठाना पड़ा।

प्रभावः– दक्षिण भारत में रोमन व्यापार का आर्थिक प्रभाव अधिक स्पष्ट था, जब कि उत्तर भारत में रोमन यूनानी विचारो तथा कला–कौशल का प्रभाव अधिक दिखाई पड़ता है। निःसंदेह इसका कारण उत्तर भारत का यूनानी संस्कृति का दीर्घ कालीन सम्पर्क था। रामनो से व्यापार तथा उनकी मसानो की मांग के कारण ही भारतीय व्यापारियों को मध्यस्थ बनकर मलाया, जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया तथा बेर्सियो आदि देशों में जाना पड़ा।

इसी समय चीन से भी भारतीय सम्बन्ध स्थापित हुआ। ईसा पूर्व की दूसरी शती में कुछ ऐसी वस्तुए भारत में प्रयुक्त होती थी। जिनके नाम स्पष्टता चीनी भाषा में थे। जैसे– चीनपट्ट, चीनाशुक, बांस तथा कीचक आदि।

Townः– शिल्प और वाणिज्य तथा व्यापार में वृद्धि और मुद्रा के अधिकाधिक प्रयोग के परिणाम स्वरूप इस काल में अनेकानेक नगरो की वृद्धि हुई। वैशाली, पाटलिपुत्र, वाराणसी, उत्तर भारतीय नगरो के उल्लेख साहित्यिक ग्रंथो में मिलते है और कुछ नगरों का वर्णन चीनी यात्रियों ने भी किया है। अधिकतर नगर ईसा की पहली और दूसरी सदी में कुषाण काल में फले–फूले। ऐसा उत्खननो के आधार पर कहा जा सकता है। क्योंकि उत्खननों से कुषाण युग की उत्कृश्टतर संरचनाये प्राप्त हुई है।

इनसे यह भी प्रगट होता है कि विहार के कई स्थल जैसे विराद, सोनपुर और वम्सर आदि तथा पूर्वी O.P. के कई स्थल खैराडीह तथा मासेन कुषाण काल में समृद्ध थे। इसी तरह उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद के पास श्रृंगवेरपुर, सोहगौर, भीटा, कौशाम्बी तथा मेरठ और मुजफ्फरनगर जिलो में अंतरजी खेड़ा और कई अन्य स्थल कुषाण काल में उन्नति पर थे। कुल मिलाकर कुषाण अवस्था को बताये गये भौतिक अवशेषो से प्रतीत होता है कि नगरीकरण उत्कर्ष की चाटी पर पहुंच गया था। मथुरा में सोख से उत्खनन में कुषाण अवस्था के सात स्तर दिखाई देते है। जबकि गुप्त अवस्था का केवल एक स्तर है।

शक और कुषाण काल के समान ही सातवाहन राज्य में नगर उन्नति करते रहे। सातवाहन काल में पश्चिमी और दक्षिणी भारत में नगर, पैदान, हास्य कटक, अमरावती, नागार्जुन काडा, भडौ, सौपारा, अरिका मेडू, कावरी पत्तनम आदि सभी समृद्ध नगर थे। तेलगाना में कई सातवाहन बस्तियाँ मिली है। इनमें से कुछ तो आधो के दीवार घिरे, उन तीस नगरो में से होगें जिनका उल्लेख प्लिनी ने किया है।

कुषाण और सातवाहनों में नगरो की उन्नति इसलिए हुई कि रामन साम्राज्य के साथ व्यापार बहुत अच्छा चल रहा था। कुषाण सम्राज्य में मार्गो पर सुरक्षा का व्यापक प्रबंध था। ईसा की तीसरी सदी में इसका अंत होने पर इन नगरों को गहरा धक्का लगा। शायद यही घटना दकन में भी घटी। दकन में हुई खुदाईयों से भी सातवाहन अवसथा के बाद से नगर बस्तियों का ह्रास होना लक्षित होता है।

इस समय नगरों के विकास का एक अन्य कारण वणिक समुदाय का उदय भी था। ये श्रेणी संगठनो में समर्पित होकर नगरो में बसने का प्रयास करते थे।

———————————————————

Religious Devolopment – देखे रोमिला थापर पेज न0 98–102 तक

यद्यपि सातवाहन शासक अपने को ब्राह्मण कहते थे, तथा वैदिक धर्म के साथ–साथ बौद्ध धर्म भी इस समय काफी फला–फूला। स्वंय सातवाहन नरेश वेदिक धर्म के अनुयायी थे तथा ब्राह्मण वाद के विजयाभिमान का नेतृत्व करते थे। आरम्भ से ही राजाओं तथा रानियों ने अश्वमेघ वाजपेय तथा वैदिक यज्ञ को किया था। शातकर्णि प्रथम ने अनेक वैदिक यज्ञो अश्वमेघ तथा राजसूप आदि का सम्पादन किया था तथा दस अवसर पर उसने गौहस्ति भूमि आदि दक्षिणा स्वरूप प्रदान की थी। उसने अपने एक पुत्र का नाम वेदश्री रखा था तथा संकर्पण, वासुदेव, इन्द्र, सूर्य और चन्द्र आदि की पूजा किया था।

गौतमी पुत्र शातकर्णी को नासिक प्रशस्ति में वेदो का आश्रय अद्रितीय ब्राह्मण कहा गया है।

इसके बावजूद भी सातवाहन नरेश अन्य धर्मो के प्रति सहिष्णु थे। उन्होंने अपने शासन में बौद्ध धर्म को ीाी संरक्षण तथा भिक्षुओं को ग्राम दान देकर प्रोत्साहन दिया था। ईसा की प्रथम दो शताब्दियो में जो सातवाहनो के पुनत्थान का काल था। इस धर्म का सर्वाधिक विकास हुआ।

इस समय पश्चिमी दकन में क्षहरातों तथा सातवाहनों में विहारो का निर्माण कराने के लिए पास्थलि होड़ सी लगी थी। सातवाहन काल में दकन की सभी गुफाये बौद्ध धर्म से ही सम्बन्धित है। कार्ले तथा नासिक में अनेक गुहा विहारो तथा गुहा चेत्यों का निर्माण हुआ।

सातवाहनो के समय में बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय का बोलबाला था। खासकर शिन्पियों के बीच। शिल्पियों ने अभूत पूर्व दान देकर तथा बौद्ध धर्म का संरक्षण देकर उसका विकास किया।

आन्ध्र प्रदेश में नागार्जुन कोडा और अमरावती सातवाहनों के शासन में और विशेषकर उनके उत्तराधिकारी दूम्क्षा फुओ के शासन में बौद्ध संस्कृति के महत्वपूर्ण केन्द्र बन गये।

सातवाहन युग में स्तूप बोधिवृक्ष चरणचिन्ह, त्रिशुल, धर्म चक्र, बुद्ध तथा अन्य बड़े संतो के धातु अवशेषीणों की पूजा होती थी।

(5) ART – कला– सातवाहन काल की चाहे मूर्तिकला को देखे चाहे स्थापत्य कला को लगभग सम्पूर्ण कलात्मक अभिवयक्ति के केन्द्र में बौद्ध धर्म है और इसमें से अधिकांश की सर्जना धनवान वणिकों और शिल्प श्रेणियों के दान में तथा राजाओं के संरक्षण में सम्भव हुई। धर्मिक स्थापत्य कला के अवशेष बौद्ध स्तूप तथा बौद्ध गुफा मन्दिर है।(चैत्य तथा विहार)

स्तूप जिसका प्रारम्भ बौद्धो से पहले प्रचलित समाधि टीलों से माना जाता था। एक अर्द्धवृचाकार गुम्बद जैसा होता था, जिसका निर्माण स्वंय बुद्ध के या किसी पुष्यात्मा भिक्षु अथवा संत के किसी पवित्र स्मृति चिन्ह अथवा किसी पवित्र धर्म ग्रंथ के ऊपर किया जाता था। स्तूप के चारो और एक घेरा और उससे लगा हुआ एक मार्ग होता था। इस परिधि के चारो ओर रोलिंग में चार सथानों पर तारण होते थे। जो शिल्पियों को अपने कौशल के प्रदर्शन का अवसर देते थे।

स्तूपो में अमरावती का स्तूप सर्वाधिक प्रसिद्ध था। दुर्भाग्यवश यह अब अपने मूल स्थान से स्पष्ट हो गया है। अमरावती स्तूप की न केवल वेदिका ही संगेमरमर की थी, अपितु गुम्बद भी संगेमरमर की ही परियाओं से जड़ा गया था। गुम्बद के शीर्ष पर एक मंजूषा थी जिसके उपर क्षतू लगा था।

कला विदों की मान्याता है कि उस स्तूप का निर्माण लगभग 250 BC में हुआ थ, परन्तु वशिष्ठी पत्र पुलुमावी के समय में इसका जीर्णोद्वार किया गया था। सम्भवतः इसी समय इस स्तूप

के चारो तरफ पाषाण वेदिक बना दी गयी थी। इस काल में पश्चिमोत्तर दकन या महाराष्ट्र में अत्यंत दक्षता तथा लगन के साथ पर्वत गुफाओं को काटकर चैतयगृह तथा विहारों का निर्माया कराया गया।

चैत्यगृह वस्तुतः प्रार्थना भवन होते थे जो स्तूपों के समीप बनाये जाते थे। इनमें नासिक, कार्ले, भाषा, कन्हेरी आदि के गुहा विहार एवं गुहा चैत्य विशेष उल्लेखनीय है।

कार्से का चैत्य गृह सबसे बड़ा और सबसे सुरक्षित दशा में है। कार्ले की गुफा में एक चौकोर द्वार से प्रवेश करना पड़ता है। जहाँ से व्यक्ति पूजा कक्ष में प्रवेश करता है। प्रवेश द्वार पर एक विशाल स्तम्भ बना है तथा स्तम्भ के ऊपर चार सिंह विराजमान है।

इस काल की सहायक थी, जिसका उद्देश्य अनिवार्य तथा स्तूपों की तोरण तथा रेलिंग और चैत्यों के प्रवेश द्वारों को सजाना था। प्रारम्भिक मूर्तिकारो को पत्थर पर कार्य करने का अभ्यास नहीं था और लकड़ी तथा हाथी दांत के मृदुतर माध्यमों में वे दक्ष थे।

———————————————————

संगम युगीन संस्कृति

भारत के सूदूर दक्षिण में कृष्णा एवं तुंगभद्रा नदियो के दक्षिण के भू–भाग में जिसे प्राचीन काल में तमिल कम प्रदेश के नाम से जाना जाता था। इसवी सन के बहुत पहले से ही चोल पाण्डय तथा चेर नामक तीन प्रमुख राज्य तथा इनके अधीनस्था कतिपय अन्य छोटे राज्य अस्तित्व में आ चुके थे। इन सब राज्यो के ाकल को संगम युग के नाम से जाना जाता है। इनका उल्लेख अशोक के अभिलेखों अथवा क्लासिकी लेखकों के विवरणों तथा तमिल साहित्य में मिलता है।

संगम सहित्य से तमिल देश के निवासियों के रानीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक जीवन के विविध पक्षों को प्रकाशित करने में पर्याप्त सहायता मिलती है। नीलकंठ शास्त्री के अनुसार– संगम युगीन साहित्य में इस युग की सामाजिक व आर्थिक स्थितियों जनता द्वारा स्वीकृत तथा पोषित विचारों तथा आदर्शो तथा उनको मूर्तिमान करने और जीवित रखने वाली संस्थाओं और कार्यो का असमान्य रूप से पूर्ण एवं वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया गया है।

(1) प्रशासन– संगमयुगीन तमिलकम प्रदेश का शासन तत्र राजतंत्रात्मक था, जिसमें रापद वंशानुगत था। यद्यपि राजा पुर्णतयः निरंकुश था तथापि मंत्रि पद द्वारा उस पर कुछ नियंत्रण अवश्य रहता था। ये राजा की प्रशासन में सहायता करती थी। इनका गठन पुरोहित ज्योतिषियों तथा वैधो के प्रतिलिधियों द्वारा किया जाता था।

ब्राह्मण के प्रशासन में विशेष महत्व मिलता था। इस युग में दो प्रकार की सभाये थे। नगर सभा और ग्राम सभा नगर सभा मुख्य रूप से न्यायव्यवस्था के संचालन तथा न्यायप्रक्रिया के क्रियान्वयन में शासक की सहायता करती थी। प्रत्येक ग्राम में एक सभा अथवा पंचायत स्थान होता था। जहाँ गांव के लोग एकत्र होकर गांव की आम गतिविधियों पर विचार विमर्श करते थे।

नीलकंठ शास्त्री का मत है कि– परवर्ती काल में विकसित चोल शासन प्रणाली में ग्राम शासन प्रणाली के बीच इन चोल पंचायतों में देखा जा सकता है।

आय का प्रमुख साधन कृषि कर तथा व्यापार वाणिज्य कर था। भूमिकर नकद तथा वस्तुओं के रूप में लिया जाता था, जो सकल उत्पादन का छठा भाग था। राज्य सिंचाई की व्यवस्था करता था। चोल राजा करिकाल ने सिंचाई की एक नवीन प्रणाली विकसित किया था। कावेरी के सहारे एक सुदीर्घ बांध बनवाकर जल को नियत्रित किया तथा नहरो के माध्यम से इसे सिंचाई के काम में लाया गया।

राजा की सभा अथवा मनरम सवौच्च न्यायलय था। इसमें दीवानी तथा फौजीदारी दोनो मामने निष्यार्थ भेजे जोते थे। चोरी की वस्तु के साथ रंगे हाथ पकड़े जाने पर चोर के सिर काट लिये जाते थे। वयक्ति चार के अभियोग में थी मृत्यु दंड का विधान था। झुठी गवाही के अपराध में जुबान काट ली जाती थी। वास्तव में दण्ड व्यवस्था अत्यंत कठोर थी।

सात राजाओ के विरूद्ध सफलता प्राप्त करना इनके यहाँ गौरव की बात मानी जाती थी। जो राजा यह सफलता प्राप्त का लेता था। उसे पराजित राजाओं के मुकुटों की माला से सुशोभित किया जाता था। इनकी सेना चतुरंगिणी थी। जिसमें रथा रोही, गथा रोही, अश्वा रोही तथा पदाति सैनिक थे। युद्ध भूमि में वीरगति प्राप्त करना अत्यन्त शुभा माना जाता था। युद्ध भूमि के अलावा मरने वाले सैनिको के शरीर को तलवार से काट दिया जाता था।

नीलकंठ शास्त्री के अनुसार–"संगम युग में युद्ध भूमि में मृत सैनिक की स्मृति में स्मारक पत्थरो के निर्माण की भी प्रथा थी।"

युद्ध का संचालन स्वंय राजा ही करता था सैनिकों की भांति राजा को भी युद्ध भूमि में मृत्यु प्राप्त करना श्रयष्कर स्वीाकर किया जाता था। विजित राजाओं को स्त्रियों के नूपुर तथा पर्णवस्तु पहनने के लिए विवश किया जाता था।

(2) सामाकि जीवन :– सामाजिक दृष्टि से यह युग आर्य तथा आर्येतर सांस्कृतिक तत्वों के समन्वय का युग माना जा सकता है। यहाँ आर्य युगीन चतुर वर्ण व्यवस्था नहीं दिखानी पड़ती। सगंम साहित्य में समाज में चार वर्ग मिलते है। ब्राह्मण– अत्सर, शासक, बेलिगर, वणिक तथा बेलाल (कृषक)। समाज में ब्राह्मणों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। जिसका मूल कारण इस युग में वैदिक यज्ञो का प्रचलन था। ब्राह्मणो का वध महानतम अपराध माना जाता था। ब्राह्मणों के बाद दूसरा स्थान बेलारो का थरा। इसकी समाजिक प्रतिष्ठाा राजाओं के समान थी।

बंदरगाहों के निकट स्थित शहरों में कुछ विदेशी जातियां भी थी। इनमें ग्रीका, रोमन तथा अरबो की अधिकता थी। पण्डय शासकों ने रामनो को ाअपनी विशेष सुरक्षा में लगा रखा था। दास प्रथा के अस्तित्व नहीं मिलते। एक पत्नी प्रथा का प्रचलन था। सती प्रथा को आदर की दृष्टि से देखा जाता था।

मणिमेकलै से पता चलता है कि उपपत्नियों को नृत्य, गायन, वादन, पाकशास्त्र, चित्रकारी इत्यादि की शिक्षा दी जाती थी। स्त्रियाँ राजा की अंगरक्षिका के रूप में भी कार्य करती थी।

गौहत्या, भूणहत्या तथा ब्राह्मण हत्या महा अपराध माना जाता था। सामान्यतः अग्निदाह समाधि करण दोनो प्रथा प्रचलित थी।

धर्म– संगमयुगीन धर्म एवं देव मंडल भारतीय ब्राह्मण धर्म से प्रभावित दिखाई पड़ता है। यहाँ शिव बलराम, कृष्ण तथा मुरूगन जैसे देवताओं की पूजा की जाती थी।

मरूगन इनका प्राचीन देव है। आगे चलकर कार्तिकेय से इसकी अभिन्नता स्थापित की गयी। यह मूलत+ एक पर्वतीय देवता था। जिसकी उपासना मच्चलियन नृत्यो में की जाती थी। भारतीय मान्यतानुसार इसका वाहन कुक्कुट था तथा पर्वत शिखर पर इन्हें क्रीड़ा काफी पसंद थी।

शिव की उपासना अर्द्धनारिश्वर के रूप में की जाती थी। दक्षिण में शिव एवं पर्वती राज्य की पुत्री मिनाक्षी के विवाह की एक सामान्य कथा प्रचलित है। मणिमेकले में एक सरस्वती मन्दिर का उल्लेख मिलता है, जिससे सरस्वती पूजा का संकेत मिलता है।

इस युग में वैदिक धर्मो की भांति यज्ञ एवं संस्कार भी प्रचलित थे।

समाज– इसके सामाजिक रीति रिवाजों में अतिथि सेवा का महत्व था। अतिथि को घर से कुछ दूर पहुंचने (See off) की परम्परा थी। ये लोग जादू–टोने तथा भूत प्रेत में विश्वास करते थे। खुलेबालो वाली स्त्रियाँ अपशगुन मानी जाती थी। ताबीज धारण किये जाते थे। ये कार्यो के शगुन में विश्वास करते थे।

कुछ युग तथा संस्कार उसी रूप में प्रचलित थी किन्तु अनेक धार्मिक संस्कारों तथा उपासना पद्धतियों में दक्षिण की प्राचीन परम्परायें भी संलिप्त गयी थी।

तमिल देश में पर्वत जैन तथा बौद्ध मन्दिर तथा मढ़ मिले है। जहाँ बौद्ध तथा जैन साधु रहते थे। पटिटन पल्ले से ज्ञात होता है कि– जैन तथा बौद्ध मन्दिर शहर के एक भाग में स्थित थे तथा शहर के दूसरे भाग में ब्राह्मण यज्ञ करते थे।

कुद लोगो की मान्यता है कि जैन तथा बौद्ध धर्म की जड़े तमिल देश को आर्योकरण के प्रचम के पहले से ही गहराई से जम गयी थी।

कला– संगम युगीन तमिल कम प्रदेश के निवासियों की कलात्मक एवं स्थापत्य विषयक उपलब्धियों के विषय में यद्यपि अधिक ज्ञात नहीं हो सका है तथापि जो कुछ साधन उपलब्ध है। उसके आधार पर कहा जा सकता है कि–इस क्षेत्र में ये कोई खास उन्नति नहीं कर पाये थे। ये अपने–अपने नगरों दुर्गो आदि को चारो तरफ से रक्षात्मक प्राचीय से घेरते थे।

साहित्य :– तमिल भाषा का प्राचीनतम साहित्य संगम साहित्य के नाम से जाना जाता है। डा0 F.W. थामस ने तमिल साहिव्य को संस्कृत साहित्य के बाद सबसे बड़ा साहित्य माना है।

संगम का अर्थ–सधं या परिषद है। संगम तमिल कवियों विद्वानों आचार्यो ज्योतिषियों तथा अन्य बुद्धिजीवियों की एक परिषद थी। इस परिषद या संगम का गठन पाण्यम शासकों के संत्क्षम में किया गया था। प्रत्येक लेखक अथवा कवि को जो अपनी रचना प्रकाशित करवाना चाहता था। अपनी पांडु लिपियों को उस परिषद के समक्ष रखना पड़ता था। परिषद की संस्तुति के बाद ही उसे प्रकाशित किया जाता था। अनुभुतियों से ज्ञात होता है कि इस प्रकार के तीन संगमो का पाण्डयो की राजधानी मदुरा तथा पाण्डय शासकों के संरक्षण में आयोजन किया गया था। ऋषि अगस्त्य जिन्हें दक्षिण भारत में आर्य संस्कृति के प्रसार का श्रेय दिया जाता है (1) प्रथम संगम की अध्यक्षता किये थे। इस संगम की अध्यक्षता किये थे। इस संगम में अम्कतियम, परिपदल, मुदुनरे तथा कल रियविरय जैसे मानक ग्रंथो की रचना हुई। दुर्भाग्य वश इस संगम का कोई भी ग्रंथ अब उपलब्ध नहीं है।

(2) द्रितीय संगम की अध्यक्षता– तोलकप्पियर ने की थी। इस संगम में अकत्रियम, तोलकप्पियम, मेनदालि, व्यालमलय, मापुरानम आदि ग्रंथो की रचना की गयी।

(3) तृतीय संगम का नक्कीरर की अध्यक्षता में आयोजन किया गया। वरिपादल, वीर, पेरिस, नेडुण्योके आदि उत्कृष्ट ग्रंथ है। आज उपलब्ध सभी ग्रंथ उसी संगम के है। द्रितीय संगम के भी सभी ग्रंथ नष्ट हो चुके है।

तीसरे संगम के ग्रंथ महें संग्रह के रूप में मिलते है। इसमें एत्तुतो के (अष्टसंग्रह) पत्तुरयात्तु (दशमीत) आदि है।

इनके अतिरिक्त अनेक महाकाव्यों की भी रचना की गयी जिनमें प्रमुख निम्न है– शिल्पकादिरम By इलांगो आदिमल– सीतले सत्तनार का मीरामेकलै तथा विरूक्त देवर का जीवक चिंतामणि है। नीलकंठ शास्त्री– संगम युग के 100 AD से 250 AD तक माना है।

वैदेशिक सम्बन्धः– तमिल साहित्य से ज्ञात होता है कि तमिल राज्यों के रोम, मिश्र, अरब तथा पूर्व में मलयद्वीप समूहो चीन तथा श्रीलंका से वैदेशिक व सांस्कृतिक सम्बन्ध थे। तमिल तेश के भीतरी भागो से नीरो 54 दक्षिण AD के सिक्के मिले है। जो तात्कालिक सम्बन्ध के मूक साक्षी है। मजिरिश में आगस्तस के लिए एक मन्दिर भी बनाया गया था। कावेरी पत्तनम में भी एक यवन बस्ती थी।

चेरो की प्राचीन राजधानी करूर से जिसे वान्जी या वान्जी पुरम कहा जाता है। उत्खनन से रोमन सुराहियों के अवशेष स्थानीय चक्रांकित बर्तन एक रोमल सिक्का तथा काले तथा लाल मिट्टी के बर्तन मिले है।

अरिका मेडू से ऐल्टाईन मृदभांड अरेन्टियम रोमन मिट्टी के दीप (Lamp) रामल कांच के कटोरे रत्न तथा मनके मिले है। एक मनके पर तो रोमन सम्राट आगस्त्य की आकृति भी मिलती है।

भारतीयों दासो का प्रदर्शन शलभी फिलाडेल्फस के शोभायात्रा के चित्रो में मिलता है। इससे पता चलता है कि प्राचीन रोमन भारत से भारतीय दासो तथा पशुपक्षियों का आयात करते थे।

इसी प्रकार लेम्पोस्कस से मिली एक चांदी की थाली जो दूसरी या तीसरी ई0 की है, में एक भारत माता एक कुर्सी पर विराजमान है। कुर्सी के पांव हाथी के दांत के बनाये गये है। भारत माता का दाहिना हाथ कटक मुद्रा में है। इनके बाये हाथ में धनुष है। मुर्ति के चारो ओर भारतीय पशुपक्ष एक तोता, एक गिनी मुर्गी, दो कुत्ते है। उनके पैर के नीचे पूजा की मुद्रा में दो भारतीय व्यक्ति है। जिनमें एक पालतू शेर तथा दूसरा चीता लिए हुए है।

इस चित्र से पता चलता है कि तत्कालीन रामनों का भारत के विषय में कितनी अधिक जानकारी थी तथा वे भारतीय वस्तुओ के प्रति कितनी अधिक रूचि रखते थे।

राष्ट्रकूट, इतिहास में उनकी भूमिका, कला संस्कृति में योगदान।

दक्षिणापथ में बादामी के चालुक्यों का विनाश राष्ट्रकूटों द्वारा हुआ था। इन राष्ट्रकूटो की उत्पत्ति के विषय में अनेकानेक मत प्रतिपादित किये गये है। लेकिन डा0 अल्तेकर का मत सबसे उपयुक्त प्रतीत होता है। वे राष्ट्रकूटो को 'रठिाके' की संतान मानते हे। रडिको का उल्लेख अशोक के अभिलेखों में भी हुआ है। नानाघाट अभिलेख में इन्ही रठिकों को महारठी भी कहा गया है। ये रठिक अथवा राष्ट्रकूट पहले प्रशासलिक अधिकारी थे। इन अधिकारियों की बाद में एक जाति बन गयी। प्रांचीन काल के अभिलेखो में राष्ट्रकूट नामक पदाधिकारियों का उल्लेख मिलता है। बाद के राष्ट्रकूट अभिलेखो में उन्हें यदुवंश से सम्बन्धित किया गया है। राघनपुर के लेख में इस वंश के गाविन्द तृतीय की तुलना यदुवंशी कृष्ण से की गयी है।

राष्ट्रकूट मूलतः लाटूर (आन्ध्र प्रदेश) के निवासी थे। इस कुल के लोग चालुक्यो के राज्य में अधिकारी अर्थात राष्ट्रकूट थे जिसका अर्थ होता है। 'राष्ट्र का प्रधान' यही से वे वरार में जाकर बस गये और बाद में उन्होने सामंत पद प्राप्त कर लिया। अंततः चालुक्यो की सत्ता समाप्त कर अपने स्वतन्त्र राज्य की स्थापना किये।

———————————————————

दंति दुर्ग– 742–756 AD

प्रारम्भ में दन्ति दुर्ग अपने पिता की भांति चालुक्य नरेश का सामंत था। 745 AD में चालुक्य नरेश विक्रमादित्य द्रितीय की मृत्यु हो गयी। इस तिथि के पश्चात अवसर पाकर दंतिदुर्ग ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी तथा महाराजा धिराज की उपाधि धारण की।

सिंहासनरूढ़ होने के बाद उसने तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का अध्ययन किया और एक निश्चित योजना के अधार पर अपनी रणनीति का शुभारंभ किया सिन्ध के मुस्लिम शासकों के निंरंतर आक्रमण ने गुजरात और मालवा के राज्यों को निर्बल बना दिया था। चालुक्यों और पल्लवों के पारस्पारिक बैमनस्थ से दोनो ही राज्य अशक्त हो रहे थे। दंतिदुर्ग ने इसका भरपूर लाभ उठाया। यही नहीं पल्लव वंश के भीतर होने वाले गृह युद्ध ने भी उसे पल्लव राजनीति में हस्तक्षेप करने का अवसर प्रदान किया। इस प्रकार अपनी कूटनीतिक संधियों प्रतिसंधियो एवं अभियानों की सहायता से दंतिदुर्ग ने अपने पिता के सामन्त राज्य को धीरे–धीरे एक विशाल राज्य में परिवर्तित कर दिया।

इसने मालवा के गुर्जर शासक देवराज को पराजित किया। कोश्ल नरेश उदयन को पराजित किया। कलिंग राज तथा भीर्शेल के चोड़ो को पराजित किया। इस प्रकार उसका गुजरात तथा मध्यभारत के केन्द्रीय तथा उत्तरी भागो पर अधिकार हो गया।

सुदूर दक्षिण में उसने पल्लवों की राजधानी कांची में प्रवेश किया। पल्लव नरेश नंदिवर्मन भयभीत होकर उससे संधि कर लिया। यही कारण है कि दशावतार गुहालेख में दतिदुर्ग को कांची नरेश का विजेता कहा गया है।

इस प्रकार अपनी (चालुक्य) स्थिति सुदूढ़ कर लेने के बाद उसने कीर्तिवमर्नन पर आक्रमण कर उसे अंतिम रूप से पराजित कर दक्षिणापथ का सार्वभौम शासक बन बैठा।

(2) कृष्ण प्रथम–

यद्यपि दंतिदुर्ग ने कीर्तिवर्मन (चालुक्य) को पराजित तो अवश्य किया था तो लेकिन उसकी शक्ति का पूर्ण रूपेण उन्मूलन नहीं कर सका था। राधनपुर लेख से ज्ञात होता है कि– "कृष्ण ने चालूक्य सेना के समुन्द्र को नियमित कर उसके राज्य लक्ष्मी को प्राप्त कर लिया था।" इस विजय के परिणामस्वरूप समस्त कर्नाटक के उपर राष्ट्रकूटो का अधिकार हो गया।

इसके बाद कृष्ण, दक्षिणी को मैसूर के गंगों तथा वेगी के चालुक्यो को अपने अधीन किया।

इस प्रकार कृष्ण प्रथम राष्ट्रकूट राजवंश का एक महान शासक था। उसने अपने पराक्रम से उत्तराधिकार से प्राप्त राष्ट्रकूट राजय की सीमा को लगभग तीन गुना कर दिया।

इसने सुदूर दक्षिणी भारत तक सामाजिक अभियान करके कांची के पल्लवों को भी पराजित किया था तथा बारवायी के प्रसिद्ध चालुक्य राजवंश की शक्ति का नाश करके सम्पुर्ण कर्नाटक को अपने अधीन कर लिया था।

(3) गोविनद द्रितीय–772 AD तक

इसने अपने अनुज ध्रुव को उसकी योग्यता तथा प्रशासनिक दक्षता पर मुग्ध होकर सम्पूर्ण राज्य शासन का उत्तर दायित्व सौंप कर स्वंय विलासी प्रकृति का हो गया था। ध्रुव ने प्रजाजनों में सम्राट गोविन्द द्रितीय की छवि बिगाड़ कर उसके विरूद्ध सशक्त विद्रोहात्मक अभियान चलाया। फलतः गोविन्द द्रितीय ने अपने भाई ध्रुव की शक्ति कुचलने के लिए मालवा, गंगाबाड़ी, बेगी तथा

कांची के शासकों को अनेको प्रलोभन देकर उन्हें अपनी ओर मिलाने तथा सैनिक सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया। लेकिन ध्रुव ने सबको पराजित कर 780 AD में राजगद्दी पर अधिकार कर लिया।

(4) ध्रुव 'धारावर्ष' 780

इसने सर्वप्रथम गंगाबाड़ी पर आक्रमण कर गंगनरेश को पराजित कर उसे बन्दी बनाकर सम्पूर्ण गंगाबाड़ी राज्य को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

पल्लव नरेश दंतिवर्मन ने भी ध्रुव के विरूद्ध गोविन्द द्रितीय की सैनिक सहायता की थी। राघनपुर अभिलेख से ज्ञात होता है कि– वह ध्रुव की पराक्रमी सेना से पराजित हो गया। अंततः पल्लव नरेश ने बहुसंख्यक हाथी भेट करके ध्रुव से अपनी सुरक्षा की याचना की ध्रुव ने बेगी नरेश, विष्णु वर्द्धन चतुर्थ को भी पराजित कर अपनी छत्रछाया में रहने के लिए विवश किय।

इस प्रकार ध्रुव अल्प समय में ही अपने साहस व पराक्रम से उपर्युक्त राज्यों को जीतकर दक्षिणी भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक बन गया। अपनी इन्हीं सफलताओं से प्रेरित होकर वह उत्तरी भारत की राजनीति में हस्तक्षेप करने को विवश हुआ।

त्रिकोणात्मक संघर्ष–

पाल शासक – धर्मपाल

प्रतिहार शासक – वत्स राज

(5) गोविन्द तृतीय– ध्रुव के चार पुत्र स्तम्भ, कर्क, गोविन्द, इन्द्र।

उत्तराधिकार युद्ध– नौसारी दानपत्र– स्तम्भ ने पल्लव, पाण्डय, चोल, गंग केरल, आन्ध्र, बेगी चालुक्य, मौर्य, गुर्जर आदि 18 राज्यों को मिलाकर गोविन्द द्रितीय को अपदस्थ करने का प्रयत्न किया।

उत्तराधिकारी से निवृत्त होने पर गोविन्द ने गंगावड़ी नोलम्बा वाड़ी पर आक्रमण किया।

पल्लव राज्य पर आक्रमण– अभिलेखो से ज्ञात होता है कि– गोविन्द तृतीय ने कांची के राजा को पराजित करके रामेश्वरम में अपना सैन्य शिविर स्थापित किया।

बेंगी पर आक्रमण– इसके बाद उसने पूरब में बेगी राज्य पर आक्रमण किया। इस समय चालुक्य नरेश विजयादित्यथा। राघनपुर ताम्रलेख से ज्ञात होता है कि युद्ध में ब्रगीनृपति विजयादित्य पराजित हुआ तथा गोविन्द ने उसे अपदस्य करके भीम सालुक्कि को बेगी का शासक बनाया।

त्रिकोणात्मक संघर्ष– नर्वदा नदी के दक्षिण में सभी महत्वपूणै राज्यो को पराजित के बाद गोविन्द तृतीय ने उत्तर भारत की राजनीति में हस्तक्षेप करने की योजना बनायी।

प्रतिहार – नागभट्ट

पाल – धर्मपाल

संजन ताम्रपत्र के अनुसार–"हिमालय की उपत्यका तक राष्ट्रकूटो की रणभेरी निनादित हो चुकी थी।"

दक्षिण भारतीय राज्यो के सामडिक संघ पर आक्रमण– गाविन्द के उत्तरी भारत अभियान की कालावधि में दक्षिण भारत के पल्लव, पाण्डय, चोल, केरल तथा पश्चिमी गंग आदि राज्यो के नरेशो ने एक संयुक्त मोर्चा बनाकर अनेक दिशाओं से राश्ट्रकूट राज्य पर आक्रमण कर दिया।

संजन ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि– गोविन्द तृतीय ने इस संध को पराजित किया। गंग नरेश मारा गया। कांची पर राष्ट्रकूट का अधिकार हो गया। चोल तथा पाण्डय राज्यों को रौंद डाला गया।

(6) बेगुमा व सांगली ताम्रपत्र से ज्ञात होता है ाकि अमोघवर्ष ने बेगी के चालुक्य राज्य का पराजित कर उसे अपनी वंदना करवाया।

इसी प्रकार– गंग नरेश को भी हराकर अपने अधीन किया।

मिहिर भोज का आक्रमण– अमाधवर्ष की आंतरिक समस्याओं का लाभ उठाकर प्रतिहार नरेश मिहिर भोज ने अपने पूर्वजो की पराभव का बदला चुकाने के लिए उत्तरी राष्ट्रकूट भू भागो पर आक्रमण कर दिया। लेकिन अमोघ वर्ष सेना ने कठियावाड़ के निकट मिहिरभोज की सेना को आगे बढ़ने से रोक दिया।

(7) वेगी के चालुक्यों से युद्ध– राष्ट्रकूटो व वेगी के चालुक्यों के बीच विधमान वेमलस्य कृष्णा द्रितीय के काल में और उग्र रूप धारण कर लिया। वेगीनरेश विजयादित्य द्रितीय ने अमाध वर्ष से निरन्तर युद्ध में रह रहकर राष्ट्रकूट से अपने राज्य के काफी भागो को मुक्त करा लिया था। कलचुम्बुरू अभिलेख से ज्ञात होता है कि कृष्ण द्रितीय भी विजयादित्य से पराजित होकर उसकी वंदना किया। उसने प्रतिहार शासक से भी युद्ध किया।

चोलो से युद्ध– कृष्ण द्रितीय के समय चोल राजा परान्तक था। कृष्ण ने उस पर आक्रमण कर दिया। जिसमें 911 AD में कृष्ण द्रितीय की पराजय हुई

इस प्रकार कृष्ण द्रितीय के काल में वेगी के चालुक्यों ने कुछ समय के लिए राष्ट्रकूटों की शक्ति पदाक्रांत कर दिया। यद्यपि मिहिरभेज व महेन्द्र पाल भी टकराये, परन्तु वे उसे कोई क्षति पहुचाने में सफल नहीं हुए।

(8) इन्द्र तृतीय– इसने कान्यकुण्ज के प्रतिहार नरेश महीपाल को पराजित कर काव्यकुण्प पर अपना अधिकार कर लिया।

वेगीराज्य का विजयः– इस युद्ध में वेगी नरेश मार डाला गया। फलतः इन्द्र ने वेगी के कुछ भागो पर अधिकार कर लिया।

(9) कृष्ण तृतीय–

चोलराज्य पर आक्रमण– कन्याकुमारी अभिलेख से ज्ञात होता है कि– कृष्ण तृतीय ने चोल नरेश परान्तक को पराजित कर चोल राज्य को आक्रान्त कर दिया। अपनी चोल विजय से उत्साहिति होकर कृष्ण तृतीय की विजय वाहिनी रामेश्वरम् तक पहुंच गयी तथा उसने दक्षिणी समुन्द्र तट पर अपना विजय स्तम्भ स्थापित कराया। यही नहीं उसे–पाण्डय, चेर, चोल तथा श्री लंका का विजेता भी कहा गया है।

उत्तरी भारतीय अभियान–

960 के बाद दक्षिण भारतीय अभियान से वापस आकर उसने अपने पूर्वजों की भांति उत्तर भारत के अभियान की योजना बनायी। इसने सर्वप्रथम बुंदेलखंड के चंदेलो पर आक्रमण किया लेकिल सफलता नहीं मिल पायी। इसके बाद उसने मालवा पर आक्रमण किया। जहाँ परमार वंशीय सीयक राज्य कर रहा था। उसे यहाँ सफलता मिली तथा मालवा की राजधानी उज्जयिनी पर उसका अधिकार हो गया।

इस प्रकार कृष्ण तृतीय अपने शासन काल में राष्ट्रकूटों की बिखरी हुई शक्ति को एक बार पुनः सुसंगठित एवं प्रतिष्ठित किया। राष्ट्रकूट अभिलेखों में उसे सम्पूर्ण भारत का विजेता कहा गया है। वास्तवव में यह अविशयोंक्ति भलजे ही हो, तथापि उसका प्रभुत्व सम्पूर्ण प्राय द्वीपीय भारत पर स्थापित हो चुका था। घूर दक्षिणी राज्यों पर उसके पूर्व अन्य किसी राष्ट्रकुट शासक को इतना प्रभुत्व एवं वर्चस्व स्थापित करने का श्रेय नहीं मिल सका था।

कर्क द्रितीय– यह अंतिम राष्ट्रकूट शासक था। इसका विशेष प्रीय चालुक्य सामंत तेलय द्रितीय ने अंततः कर्क द्रितीय को पराजित कर राष्ट्रकूट राज्य को अपने अधीन कर लिया। यह घटना 973 AD की है। इस प्रकार राष्ट्रकूट इतिहास के पन्नो से विलीन हो गये। राष्ट्रकूट दक्षिणा पक्ष में लगभग दो शताब्दी तक शासन किया। जिन्होने दक्षिण और उत्तरी भारत की राजनीति को प्रभावित किया।

———————————————————